धूतपापेश्वर

।। आरोग्यचिंतन ।।
पत्रिका

।। शास्त्रतत्त्वप्रकाशार्थं एषा चिन्तनपत्रिका ।।

दिसंबर २०२०

AROGYACHINTAN PATRIKA

COVID -19 में व्याधिक्षमत्व का महत्व।

COVID-19 महामारी ने लगभग एक वर्ष से पूरे विश्व को हतबल कर दिया है। प्रतिबंधक उपाय जैसे व्यक्तियों में सुरक्षित अंतर बनाए रखना (दो गज की दूरी– Social distancing), फेस मास्क का प्रयोग, हाथ और श्वसनप्रणाली की स्वच्छता एवं सुरक्षा का ध्यान रखना, संपूर्ण देश में लॉकडाऊन इत्यादि के बावजूद COVID-19 की रुग्णसंख्या बढ रही है। यह भी देखा गया हैं की दुर्बल रोगप्रतिरोधकशक्ति तथा इतर व्याधियों से ग्रस्त व्यक्ति COVID-19 से अधिक प्रभावित होते हैं।

COVID-19 ने विश्वभर की स्वास्थ्य–प्रणाली को पंगु कर दिया हैं और इस गंभीर व्याधि से बचने हेतु टीका (Vaccine) तथा संतोषजनक चिकित्सा विकसित करने के लिए प्रबल प्रयास किए जा रहे हैं। COVID-19 के लिए प्रभावी चिकित्सा खोजने के प्रयासो ने आयुर्वेद जैसी स्वदेशी चिकित्सा प्रणाली को अपनी कार्मुकता सिध्द करने का अच्छा अवसर प्रदान किया हैं।

COVID-19 महामारी के प्रतिकार हेतु आयुर्वेद बहुमूल्य औषधिद्रव्य तथा रसकल्पों का एक विशाल संग्रह हैं। चरक संहिता के अनुसार, आयुर्वेद के प्रयोजन इस प्रकार है– स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोगग्रस्त को स्वास्थ्य प्रदान करना। व्याधियों की चिकित्सा से अधिक स्वास्थ्यरक्षा को प्राथमिकता दी हैं। यह **"Prevention is better than cure"** इस सिद्धांत को आयुर्वेद द्वारा दिए गए महत्व को दर्शाता हैं।

व्याधिक्षमत्व का सिद्धांत तथा रोगप्रतिबंधक उपाययोजना प्रथमतः चरक संहिता में उल्लेखित हैं, जिनका बृहत्त्रयी तथा लघुत्रयी ग्रंथो में भी विस्तार से वर्णन किया गया। वर्तमान COVID-19 महामारी के संदर्भ में, यह समय की आवश्यकता हैं की **व्याधिक्षमत्व** के सिद्धांत का पुनर्स्थापन किया जाए।

आचार्य चरक के अनुसार चिकित्सा दो प्रकार की होती हैं –

१. स्वस्थस्य ऊर्जस्कर – स्वस्थ व्यक्ति के उत्तम भाव को बढानेवाली और

२. आर्तस्य रोगनुत् – रोगाक्रान्त व्यक्ति के रोग को दूर करनेवाली।

प्रथम चिकित्सा प्रकार व्यक्ति का सकारात्मक स्वास्थ्य अर्थात्–व्यक्ति का शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए हैं।

स्वास्थ्य का अनुवर्तन या पुनर्स्थापना व्यक्ति के बलपर निर्भर करता हैं, जिसमें रोगप्रतिबंधक उपाय समाविष्ट हैं और इसकी तुलना **'व्याधिक्षमत्व'** की संकल्पना से की जा सकती हैं। **व्याधिक्षमत्व** का अर्थ हैं – रोग के प्रति निवारक प्रतिक्रिया, जो **प्रतिरक्षा** (Immunity) से साधर्म्य रखता है।

चरकसंहिता तथा इसकी आचार्य चक्रपाणिकृत 'आयुर्वेददीपिका' नामक संस्कृत टीका में **'व्याधिक्षमत्व'** का विस्तृत विवरण पाया जाता हैं। आचार्य चक्रपाणि सुस्पष्ट रुप से **व्याधिक्षमत्व** की परिभाषा करते हैं। **व्याधिक्षमत्व (रोगप्रतिरोधकशक्ति)** प्रकट रोगों के निवारण के साथ उन रोगों का प्रतिबंध करता है जो अभी प्रकट नहीं हुए हैं अर्थात **व्याधिक्षमत्व** प्रकट रोगों का निवारण करता हैं तथा भविष्यकालीन रोगों का प्रतिबंध करता हैं।

न च सर्वाणि शरीराणि व्याधिक्षमत्वे समर्थानि भवन्ति।
व्याधिक्षमत्वं व्याधिबलविरोधित्वं व्याध्युत्पादप्रतिबन्धकत्वमिति यावत्।
– च. सू. २८/७ – चक्रपाणि टीका

- **व्याधिबलविरोधित्व**– उस प्रकार का प्रतिरोध जो रोग की तीव्रता कम करता है।
- **व्याध्युत्पादप्रतिबंधकत्व**– रोगप्रतिरोधकक्षमता जो रोग की अभिव्यक्ति को रोकती हैं।

शरीराणि चातिस्थूलान्यतिकृशान्यनिविष्टमांसशोणितास्थीनि
दुर्बलान्यसात्म्याहारोपचितान्यल्पाहाराण्यल्पसत्त्वानि च
भवन्त्यव्याधिसहानि, विपरीतानि पुनर्व्याधिसहानि। – च. सू. २८/७

आचार्य चक्रपाणि द्वारा दी गई **'व्याधिक्षमत्व'** की परिभाषा सामान्य रुप से संक्रामक तथा असंक्रामक रोगों को लागू होती हैं। यह कहा जाता है की सभी शरीरों में सभी रोगों के विरुद्ध समान रोगप्रतिरोधकशक्ति नहीं होती हैं। ऐसे व्यक्ति जो न स्थूल है और न कृश है, जो संहनन पर्याप्त हैं, जिनमें मांस, शोणित तथा अस्थिधातु पुष्ट है, जो उचित रुप से पोषक अन्न का सेवन करते हैं तथा जिनका मन शान्त हैं वह व्यक्ति व्याधिक्षम हैं अर्थात् किसी भी प्रकार की व्याधि का प्रतिरोध करने में सक्षम हैं। इसके विपरीत गुणवाले व्यक्ति अव्याधिक्षम हैं।

त्रिविधं बलमिति – सहजं कालजं युक्तिकृतं च।
सहजं यच्छरीरसत्त्वयोः प्राकृतं, कालकृतमृतुविभागजं वयःकृतं च,
युक्तिकृतं पुनस्तद्यदाहारचेष्टायोगजम्। – च. सू. ११/३६

बल शब्द का उपयोग **'ओज'** के पर्याय के रुप में किया गया हैं, जो सभी धातुओं का सार हैं। बल शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को दर्शाता हैं। बल के तीन प्रकार वर्णित है– सहजबल, कालजबल तथा युक्तिकृत्बल। सहजबल मानसिक और शारीरिक शक्ति या बल हैं जो जन्म से ही स्वाभाविक रुप से उपस्थित होता हैं। कालजबल वह है जो अनुरुप परिस्थितियों में होता है जैसे कि तारुण्यावस्था तथा स्वस्थ ऋतु। युक्तिकृत्बल वह है जो पोषिक आहार सेवन और उचित व्यायाम से प्राप्त होता है।

इह खलु निदानदोषदूष्यविशेषेभ्यो विकारविघातभावाभावप्रतिविशेषा भवन्ति।।
– च. नि. ४/४

आयुर्वेदानुसार, रोग के प्रकटीकरण के लिए निदान, दोष और दूष्य की सम्मूर्च्छना उत्तरदायी होती है। यद्यपि, ये तीन कारक उपस्थित है; किसी रोग का प्रकट होना या न होना एक अन्य कारक पर निर्भर होता हैं जिसे **विकारविघातभाव** कहा जाता है। निदान, दोष और दूष्य की विशेषताएँ रोगोत्पत्ति के लिए प्रतिरोधकक्षमता तथा संवेदनशीलता का निर्धारण करती हैं।

रोग की प्रक्रिया को रोकने या रोग की तीव्रता को कम करने के लिए शरीरद्वारा निष्पादित **रोगप्रतिरोधकक्षमता** (Immunity) या प्राकृतिक प्रतिरक्षा एक शारीरिक प्रतिक्रिया हैं। **'इम्युनिटी'** का अर्थ है एक रोग के लिए प्रतिरोध जो कि ह्युमन एंटीबॉडी के गठन या सेल्युलर (पेशीय) प्रतिरक्षा या दोनों के विकास के कारण होता हैं। आधुनिक चिकित्सा ने Immunomodulators को स्वस्थ तथा व्याधि अवस्था में प्रभावी उपकरण के रुप में मान्यता दी हैं। यह भी माना गया हैं कि रोगप्रतिबंधकप्रतिक्रिया का परिवर्तन (Modulation) विभिन्न व्याधियों के लिए पारंपारिक रासायनिक चिकित्सा (Chemotherapy) को विकल्प प्रदान कर सकता है। **रसायन** चिकित्सा Immunomodulatory लाभ प्रदान करती है तथा **रसायनद्रव्य** Antioxidants से समृद्ध होते हैं जो यकृत्संरक्षक, वृक्कसंरक्षक तथा हृद्य कार्य करते हैं।

जहाँ तक **रसायनद्रव्य** के व्याधिनाशन कर्म का प्रश्न है, यह आवश्यक नही है कि **रसायनद्रव्य व्याधिविघात– प्रक्रिया** या संप्राप्ति–विघटन में स्वयं सम्मिलित हो, बल्कि वे धातुओं की गुणवत्ता को वृद्धिंगत करते हैं और इस तरह व्याधि सम्प्राप्ति की षट्क्रियाकाल के चरणों की रोकथाम करने में मदद करते हैं। जैसे जैसे शरीर धातु बलवान होते हैं, वैसे वैसे स्थानसंश्रय और व्याधि की व्यक्तावस्था के लिए आवश्यक खवैगुण्य उपलब्ध नहीं होता। यह भी कहा जा सकता हैं कि **रसायनद्रव्य** रोगों के विरोध में 'Prohost resistance' बढाते है। **रसायनद्रव्य** विभिन्न स्तरों पर (रसधातु, अग्नि और स्रोतस्) कार्य करके **रोगप्रतिरोधकशक्ति** बढाते हैं।

पथ्यकर आहार, दिनचर्या तथा ऋतुचर्या के पालन के साथ ही **रसायन औषधियों** का उचित प्रयोग व्यक्ति का **'व्याधिक्षमत्व'** बढाने के लिए उपयुक्त हैं। शारीरभावों के साथ मानसभाव (सत्व) का भी **'व्याधिक्षमत्व'** बढाने में महत्व है जो कि **आचार रसायन** के नियमित पालन से प्राप्त होता है।

COVID-19 यह प्राणवह स्रोतस् की एक व्याधि है और इस महामारी की अधिकांश विशेषताओं को **जनपदोध्वंसव्याधि** के साथ जोडा जा सकता हैं।

COVID-19 जैसी **जनपदोध्वंसव्याधि** की चिकित्सा के लिए चरकसंहिता में वर्णित चिकित्सा के अनुसार अन्य उपायों के साथ **रसायन चिकित्सा** का उपयोग किया जा सकता हैं।

COVID-19 महामारी में प्राणवह स्रोतस् को बल प्रदान करने हेतु निम्नलिखित **रसायन** द्रव्य तथा योगों का प्रयोग किया जा सकता हैं जैसे – आमलकी, गुडूची, यष्टीमधु, हरीतकी, पिप्पली, सुवर्णभस्म, यशदभस्म, आयुष क्वाथ, च्यवनप्राश अवलेह, व्याघ्री हरितकी अवलेह, संशमनी वटी, महासुदर्शन घनवटी, इत्यादि।

प्रतिश्याय में ए–फ्लू–ओ–सिल फोर्ट की उपयुक्तता।

आयुर्वेद में **प्रतिश्याय** व्याधि को **नासागत रोगों** के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया हैं।

'वातं प्रति अभिमुखं श्यायो गमनं कफादीनां यत्र स प्रतिश्यायः।' – सु.उ.२४/१ – डल्हण

'प्रतिश्याय' यह शब्द दो शब्दों से बना हैं – **'प्रति'** और **'श्याय'**। **'प्रति'** जिसका अर्थ हैं अभिमुख या विपरीत दिशा में और **'श्याय'** जिसका अर्थ है गमन या असामान्य रुप में नासिका से स्राव होना।

प्रतिश्याय के कुछ महत्वपूर्ण हेतुओं में शीत जल का अत्यधिक सेवन, अत्यधिक शीत या उष्ण वातावरण का संपर्क, रजः (धूलिकण–Allergens) तथा धूम्र (धुआँ–Pollutants) का सेवन, दिवास्वाप या रात्रिजागरण करना, अतिसम्भाषण, धूमपान (Medicated fumigation), बाष्पस्वेद इत्यादी का अनुचित प्रयोग, अनार्ह होनेपर भी नस्य चिकित्सा का प्रयोग, अजीर्ण होनेपर स्नान और गुरु, मधुर, शीत, रूक्ष द्रव्यों से युक्त आहार का सेवन करना इत्यादि का समावेश हैं। यह हेतु तीनों दोषों का विशेषतः **वात** और **कफ दोष** का प्रकोप करते है।

उपर्युक्त हेतुओं के कारण, **वातप्रधान दोष** प्रकुपित होते है और **शिरःप्रदेश** (आचार्य सुश्रुत के अनुसार), **नासिकामूल** (आचार्य चरक के अनुसार), **नासा** (आचार्य वाग्भट के अनुसार) और **उर्ध्वकफाशय** (आचार्य काश्यप के अनुसार) में स्थानसंश्रित होते हैं। परिणामस्वरुप नासिका से विकृत स्राव निकलता हैं, जिसे **प्रतिश्याय** कहा जाता हैं। सम्प्राप्ति में **प्राणवह, रसवह** और **रक्तवह** स्रोतसों के सम्मिलित होने के कारण **जठराग्नि** और **रसधात्वग्नि** का कार्य भी प्रभावित होता हैं।

आचार्य चरक ने चार प्रकार के **प्रतिश्याय** का वर्णन किया हैं – वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज। उन्होंने दुष्ट प्रतिश्याय को जीर्णावस्था माना है। अन्य ग्रंथो में **प्रतिश्याय** के ५ या ६ प्रकारों का वर्णन उपलब्ध हैं।

प्रतिश्याय के पूर्वरुप तथा वर्तमान लक्षण इस प्रकार हैं – शिरोगुरुत्व, क्षवथु, अंगमर्द, तालुदारण, कण्ठध्वंस और परिहृष्टरोमता। **प्रतिश्याय** की उचित समय पर चिकित्सा न की जाए तो वह दुष्ट प्रतिश्याय में परिवर्तित हो सकता है। प्रतिश्याय और **दुष्ट प्रतिश्याय** का साधर्म्य क्रमशः Allergic Rhinitis और Rhino-sinusitis से हो सकता हैं।

प्रतिश्याय चिकित्सा क्रम में– **निदानपरिवर्जन**, उचित **नस्यचिकित्सा, धूमपान** और **बाष्पस्वेद** का समावेश हैं। **पित्तज प्रतिश्याय** में **धूमपान** को निषिद्ध बताया गया है। आयुर्वेद में **प्रतिश्याय** की उचित समय में चिकित्सा करने का निर्देश दिया गया है, क्योंकी यह बढकर **यक्ष्मा (क्षयरोग)** जैसी गंभीर व्याधि उत्पन्न कर सकता हैं। आचार्य वाग्भट ने **दुष्टप्रतिश्याय** की चिकित्सा **यक्ष्मारोग** चिकित्सा के समान करने का निर्देश दिया हैं।

प्रतिश्याय की चिकित्सा हेतु, व्योषादि वटी, शुण्ठयादि वटी, चोपचिन्यादि चूर्ण, रसकल्प जैसे त्रिभुवनकीर्ति रस और लक्ष्मीविलास रस का प्रयोग किया जाता हैं।

प्रतिश्याय की पुनरावृत्ति को रोकने लिए **रसायन** चिकित्सा तथा नासा और श्वसनमार्ग की श्लैष्मिक कला का स्वास्थ्य उत्तम रखने का निर्देश किया गया है। **ए–फ्लू–ओ–सिल फोर्ट** यह **प्रतिश्याय** तथा उससे संबंधित लक्षणों में उपशय दिलाने के लिए उत्तम योग है।

ए–फ्लू–ओ–सिल फोर्ट, **त्रिभुवनकीर्ति रस (१६० मि.ग्रा.)**, **सुतशेखर रस (८० मि.ग्रा.)** और **महासुदर्शन घन (४६० मि.ग्रा.)** का एक उत्तम संयोग है। **त्रिभुवनकिर्ति रस** उष्ण और तीक्ष्ण गुणात्मक होने के कारण प्रकुपित **वात** और **कफ** दोष का शमन करता हैं। यह विश्वसनीय और प्रमुख **ज्वरहर** औषधि योग हैं। आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित यह योग **प्रतिश्याय** से संबंधित अंगमर्द, शिरःशूल, नासावरोध, इत्यादि लक्षणो में उपशय दिलाता है। **सूतशेखर रस प्रतिश्याय** में होनेवाले कास और शिरःशूल को कम करता है तथा अग्नि का कार्य प्राकृत करता है। **महासुदर्शन घन** एक उत्तम ज्वरघ्न कल्प है तथा इसका मुख्य घटक द्रव्य **किरातिक्त** तिक्तरसात्मक, यकृत्बल्य तथा रोगप्रतिरोधकक्षमतावर्धक (Immunomodulator) है।

श्वास रोग में कास श्वास हारी रस की उपयुक्तता।

श्वासरोग प्राणवह स्रोतस् के विकारों में से एक हैं। **'श्वास'** शब्द संस्कृत मूल शब्द **'श्वस् जीवने'** से आया है जिसका अर्थ हैं– **प्राणवायु** के माध्यम से जीवन का अस्तित्व। **'श्वास'** शब्द का प्रयोग प्राकृत और विकृत दोनों प्रकार की श्वसनक्रिया को दर्शाता हैं। चरकसंहिता में **श्वासरोग** के पाँच प्रकार वर्णित हैं – महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, क्षुद्रश्वास तथा तमकश्वास।

तमकश्वास का आयुर्वेद ग्रन्थों में किया गया वर्णन **ब्रॉन्क्रिअल अस्थमा** से साधर्म्य रखता हैं। यह श्वसन मार्ग का जीर्ण शोथजन्य विकार हैं जो घुर्घुराहट, श्वासकष्टता और कास के पुनरावर्ती वेगों के रुप में प्रकट होता हैं। लघु श्वास नलिकाओं की अतिसंवेदनशीलता (Bronchial hyper-responsiveness) तथा वायुमार्ग का परिवर्तनशील अवरोध (Variable airflow obstruction) यह इस रोग की विशेषताएँ है जिसमें स्वाभाविक रुप से या चिकित्सा पश्चात् उपशय मिलता हैं।[1] भारत में तमकश्वास की रुग्णता (Morbidity) महत्वपूर्ण है तथा इसका प्रसार २% के करीब अनुमानित है।[1] वर्तमान काल में पूरे विश्व में ३० दशलक्ष व्यक्ति श्वासरोग से पिडित होने का अनुमान है जिसमें से एक दशांश व्यक्ति भारत में है।[2]

श्वासरोग के महत्वपूर्ण कारणों में धूल, धूआँ, शीत स्थानों में निवास करना, व्यायाम न करना या अत्यधिक चलना, शीतजल तथा रुक्षगुणात्मक आहारद्रव्यों का सेवन, विषमाशन, अभिष्यन्दि आहार (जो अत्यधिक श्लेष्मोत्पत्ति कर स्रोतसों में अवरोध उत्पन्न करें), विदाही अन्न, विरुद्धाहार, प्रतिश्याय, रक्तपित्त, मर्माघात इत्यादी का समावेश है।

मारुतः प्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्य कुप्यति।
उरः स्थः कफमुध्दूय हिक्काश्वासान्करोति सः।। – च. चि. १७/१७

प्रकुपित **वात** और **कफदोष रसधातु** को दूषित करते हैं और **प्राणवह स्रोतस्** में स्थानसंश्रित होकर **तमकश्वास** की उत्पत्ति करते हैं।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति सः।। – च. चि. १७/४५

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते। ग्रीवां शिरश्च सङ्गृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च।।
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरुकं तथा। अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम्।।
प्रताम्यत्यतिवेगाच्च कासते सन्निरुध्यते। प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः।।
श्लेष्मण्यमुच्यमाने तु भृंश भवति दुःखितः। तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम्।।
अथास्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम्।
न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः।।
पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः। आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति।।
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमर्तिमान्।
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते।। – च.चि. १७/ ५५–६१

तमकश्वास की विशेष सम्प्राप्ति और लक्षण इस प्रकार हैं– प्रकुपित वातदोष अपना प्राकृत मार्ग छोडकर प्रतिलोम गति से प्राणवह स्रोतस् में पहुँचता है तथा ग्रीवा एवं शिरः प्रदेश में जकडाहट उत्पन्न कर कफदोष का उदीरण करके पीनस एवं घुर्घुराहट उत्पन्न करता है। इसके फलस्वरुप तीव्र गति से प्राणों को पीडित करनेवाले श्वासरोग के वेगों में बढोतरी होती है। श्वासरोग के अतितीव्र वेग में कास के दौरान कभी–कभी रोगी मूर्छित हो जाता है। निरंतर कास के बाद भी कफःनिस्सरण न होने पर रोगी को कष्ट की अनुभूती होती है तथा कफःनिस्सरण के पश्चात् कुछ समय तक उपशय मिलता है। निरंतर कास के कारण कण्ठ में उध्वंस तथा बात करने में कष्ट होता है। रोगी को लेटनेपर निद्रा नही आती तथा पसलियों में वेदना होती है। बैठने पर रोगी को उपशय मिलता है तथा वह उष्ण वस्तु (आहार–विहार) की इच्छा रखता हैं। रोगी की आँखे हमेशा उपर की दिशा में प्रतीत होकर ललाट पर स्वेद आता है। रोगी को मुख शुष्कता प्रतीत होती है, बार– बार श्वास का वेग बढता हैं और कम होता हैं तथा मेघ, अम्बु, शीतल वातावरण, पूर्वी वायु तथा कफवर्धक आहार– विहार के सेवन से श्वास की वृद्धि होती हैं। इन लक्षणों से युक्त तमकश्वास याप्य होता हैं। यदि तमकश्वास नूतन हो अर्थात् १ वर्ष से कम अवधि का हो तो साध्य होता हैं।

तमकश्वास चिकित्साः

निदान परिवर्जन (हेतुओं का प्रतिबंध) अत्यावश्यक हैं। **तमकश्वास** की तीव्र लक्षणावस्था में प्रकुपित दोषों को प्राकृतावस्था में लानेवाली तथा स्रोतसावरोध दूर करनेवाली **शोधन (वमन और विरेचन)** तथा **शमन** चिकित्सा का अंतर्भाव होता हैं। **शमन चिकित्सा** के लिए दी जानेवाली औषधि **वात–कफघ्न, उष्ण** और **वातानुलोमक** होनी चाहिए। कुछ व्यापक रुप में उपयोग की जानेवाली औषधियाँ तथा योग इस प्रकार हैं– शटी, पुष्करमूल, तामलकी, वासा, कंटकारी, सोमलता, अभ्रकभस्म, सितोपलादि चूर्ण, तालीसादि चूर्ण, कनकासव, कंटकारी अवलेह, इत्यादि।

कास श्वास हारी रस, वनस्पति तथा खनिज द्रव्यों का संयुक्त रसायन कल्प हैं, जिसमें तमकश्वास की चिकित्सा में उपयुक्त होनेवाले घटकद्रव्य सम्मिलित हैं।

कल्पस्य सतताभ्यासः स्रोतोबलप्रदायकः।
कासं पञ्चविधं हन्ति सर्वश्वासनिवारणः।।

श्वासकास चिंतामणि रस	प्रकुपित वात और कफदोष का शमन करके प्राणवह स्रोतस् का व्याधिक्षमत्व बढाता है तथा श्वासहर कर्म करता है।
लक्ष्मीविलास रस	कफ–वातघ्न, कास–पीनस तथा प्रतिश्याहर।
सूतशेखर रस	कास–श्वासहर।
तालीसादि चूर्ण	कफनिःसारक तथा अग्निवर्धक।
वासा	कफनिःसारक तथा तमकश्वास में लाभदायी।

References:
1. Lung India 2015;32, Suppl S1:3-42. 2. Lung India. 2015 Apr; 32(Suppl 1): S1–S2.

कास श्वास हारी रस™
प्राणवहस्रोतस् के जीर्ण व्याधियों में अत्यंत प्रभावी।

उपयुक्तता
प्राणवहस्रोतस् के विकार जैसे –
- ॲलर्जिक प्रतिश्याय
- श्वास
- कास
- जीर्ण प्रतिश्याय

मात्रा एवं अनुपान
१ से २ गोली की मात्रा में दिन में १ से २ बार आर्द्रक स्वरस, तुलसी स्वरस, गोघृत, शहद, कोष्ण जल के साथ अथवा चिकित्सक की सलाहनुसार।

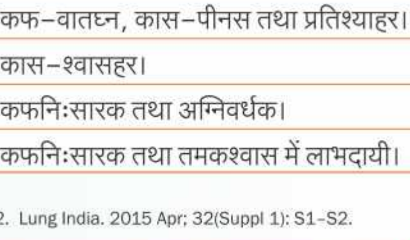

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 1902664
Kas Shwas Hari Rasa

उपलब्धता : ३० गोली (ब्लिस्टर पॅक)

हायपोथायरायडिज्म में काक्लरक्षक योग की उपयोगिता।

थायरॉईड हार्मोन की उत्पत्ती काकलक/अवटुका ग्रंथी (Thyroid gland) द्वारा होती है, जो शरीर की चयापचय प्रक्रिया (Metabolism) का नियंत्रण करती है। यह हार्मोन का प्रभाव लगभग शरीर के सभी अवयवों पर होता है। काकलक ग्रंथी द्वारा थायरॉईड हार्मोन्स (T3 तथा T4) की पर्याप्त मात्रा में उत्पत्ति न होनेपर हायपोथायरायडिज्म नामक विकार उत्पन्न होता है, जिसमें शरीर के लगभग सभी उतकों के चयापचय दर (Basal Metabolic Rate i.e. BMR) में कमी आती है। हायपोथारायरायडिज्म यह रक्त में FT3 तथा FT4 की अपर्याप्त मात्रा का निर्दर्शक है जिसके परिणामस्वरुप TSH (Thyroid Stimulating Hormone) की मात्रा में वृध्दि होती है। इसका स्वरुप उपनैदानिक (Sub-clinical) या अपरोक्ष (Overt) हो सकता है। कई व्यक्तियों में इसके लक्षण स्पष्ट रुप से दर्शित न होने के कारण उचित समय पर निदान नहीं हो पाता।

तमकश्वास (Bronchial asthma), स्थौल्य (Obesity), मधुमेह (Type 2 Diabetes Mellitus), मेदोरोग (Dyslipidaemia) तथा उच्च रक्तचाप (Hypertension) ग्रसित भारतीय रुग्णों में हायपोथायरायडिज्म अधिकांश रुप से पाया जाता है।[१] इसका प्रचलन पुरुषों की तुलना से स्रियों में अधिक है।[२] इस विकार में अनुवंशिकता भी देखी गई है।

हाशिमोटो रोग (Autoimmune disorder) यह हायपोथायरायडिज्म का मुख्य कारण है। हायपोथायरायडिज्म के अन्य महत्वपूर्ण कारणों में आयोडिन की अल्पता, काकलक ग्रंथि शस्त्रकर्म और विकिरण चिकित्सा हैं। हायपोथायरायडिज्म के सामान्य लक्षणों में थकान, मांसपेशियों में दौर्बल्य, त्वक्पारुष्य, बालों का पतला होना, स्थौल्य, मंदनाडी, शीत असहिष्णुता, मलावष्टम्भ, मानसिक अवसाद तथा अनियमित रजः स्राव है।[३] हायपोथायरायडिज्म स्त्रियों की प्रजननक्षमता तथा यौनसंबंध पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता हैं।[४,५]

आयुर्वेद दृष्टिकोण से हायपोथायरायडिज्मः

हायपोथायरायडिज्म (काकलक ग्रंथि क्रियाल्पता) इस रोग का वर्णन **आयुर्वेद** के शास्त्रीय ग्रंथो में नहीं हैं। **अनुक्त व्याधि** के निदान और चिकित्सा की संकल्पना के आधार पर इसे उचित रुप से समझा जा सकता है। चरकाचार्य के अनुसार सभी व्याधियों को विशिष्ट नामकरण नही किया जा सकता, परन्तु व्याधि की प्रकृति, उसके अधिष्ठान तथा हेतुओं को ध्यान में रखकर उन्हें समझ सकते है तथा तत् पश्चात् चिकित्सा नियोजन कर सकते है। (च.सू. १९/४६)

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषाः काकलकाश्रयाः।
कुर्वन्ति काकलमांद्यं धात्वग्नीन् मन्दीकृत्य तु ।। – अनुक्त

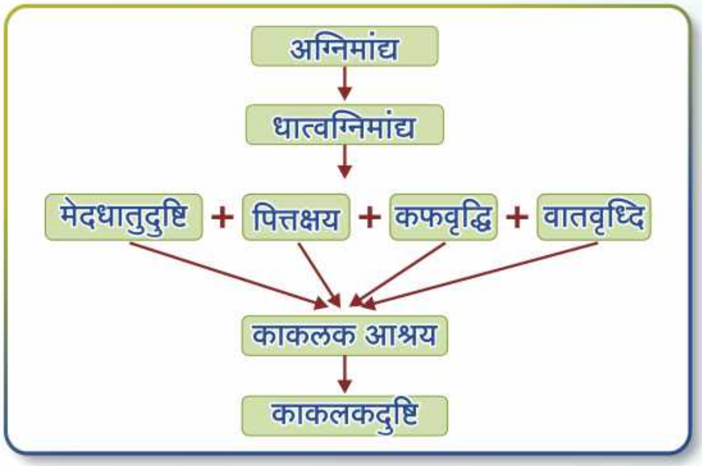

पिछले कुछ वर्षो में हायपोथायरायडिज्म की आयुर्वेद सम्प्राप्ति को समझने के लिए महत्वपूर्ण संशोधन कार्य किए गए है और इनमें से बहुतांश संधोधनकर्ताओं का मानना हैं कि इसकी सम्प्राप्ति में **अग्निदुष्टि** यह एक महत्वपूर्ण कारण हैं।

यह एक **कफ-वातप्रधान व्याधि** मानी गई है जिसमें मुख्यरुप से **रसवह स्रोतस्** की दुष्टी होती है। विभिन्न हेतुओं के परिणामस्वरुप **धात्वग्नि** मन्द हो जाती हैं जो आगे चलकर अन्य धातुओं के पोषण को प्रभावित करती हैं, विशेषतः **मेदोधातु** के पोषण को प्रभावित करती है। काकलक ग्रंथि का मुख्य कार्य देहोष्मा तथा मूलतम चयापचय दर (BMR) को नियंत्रित करना है, इसलिए इसका कार्य **भूताग्नि** से भी सम्बन्धित हैं। इस प्रकार, अग्नि के सभी १३ प्रकार (जठराग्नि, ७ धात्वग्नि और ५ भूताग्नि) हायपोथायरायडिज्म में क्षीण हो जाते हैं, जिससे विभिन्न शारीरिक तथा मानसिक लक्षण उत्पन्न होते हैं।

हायपोथायरायडिज्म (काकलक ग्रंथि क्रियाल्पता) के सम्प्राप्ति घटक[६]:

दोष – कफ और वातदोषवृद्धि तथा पित्तक्षय।

दूष्य – सभी धातु विशेषरुप से रस तथा मेदोधातु।

अग्नि – जठराग्नि, धात्वग्नि तथा भूताग्नि।

आम – जठराग्नि तथा धात्वग्नि की विकृति के कारण उत्पन्न।

स्रोतस् – सभी स्रोतस्, मुख्यतः रसवह स्रोतस् तथा मेदोवह स्रोतस्।

स्रोतोदुष्टी – संग एवं विमार्गगमन के कारण स्रोतोदुष्टी।

उद्भवस्थान – आमाशय।

अधिष्ठान – काकलक या गलमणि या कण्ठमणि।

काकलकं गलमणिः घण्टिकेति लोके।
काकलकं कण्ठमणिः कण्ठस्योन्नत प्रदेशः।। – डल्हण

धातुदुष्टी के आधारपर लक्षणः

धातु	लक्षण
रस	शरीरभारवृद्धि, थकान, अंगमर्द, दौर्बल्य, खालित्य, शीतासहिष्णुता, शोथ, रक्ताल्पता (पाण्डुरोग), अनियमित रजःस्राव तथा वंध्यत्व।
रक्त	मंदनाडी, त्वक् पारुष्य, अवसाद तथा थकान।
मांस	शरीरगौरव, मांसपेशियों में वेदना, ग्रन्थि तथा गलगण्ड।
मेद	थकान, तन्द्रा, शैथिल्य, मेदोवृद्धि तथा आयासेन श्वासकष्टता।
अस्थि	अस्थिसौषिर्य तथा सन्धिगतवात।
मज्जा	अस्थिसौषिर्य।
शुक्र	कामेच्छा में कमी तथा वंध्यत्व।

हायपोथारायडिज्म की आयुर्वेद चिकित्सा[७]:

यद्यपि आयुर्वेद औषधियों द्वारा Hormones की आपूर्ति संभव न हो परंतु, प्रतिरक्षा शिथिलता (Immune dysfunction) तथा काकलक उतकों में शोथ का नियंत्रण करने के लिए इस प्रकार से चिकित्सा की जा सकती हैः

- **अग्निदीपन** (पाचन तथा चयापचय में सुधारणा)
- **दोषसाम्य** प्रस्थापित करना (कफ-वात-शमन)
- **स्रोतोशुद्धी** (स्रोतसावरोध दूर करना)

रसायन गुणों से युक्त औषधियाँ भी हायपोथायरायडिज्म की चिकित्सा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

काक्लरक्षक योग की हायपोथायरायडिज्म में उपयोगिता:

काक्लरक्षक योग, नाम ही दर्शाता हैं कि यह काकलक ग्रंथि (Thyroid gland) के प्राकृत कर्म को संरक्षित करने के लिए उपयुक्त योग है। **काक्लरक्षक योग** यह काकलक ग्रंथि की कार्यक्षमता को प्राकृत करनेवाला, आयुर्वेद के सिध्दांतों पर आधारित संयुक्तिक योग हैं।

काक्लरक्षक योग शोधित गुग्गुल, कांचनार, अश्वगंधा, चित्रक, कुटकी और गुडूची जैसे कालानुसार परीक्ष्य औषधिद्रव्य का लाभ दिलाता है। सभी औषधिद्रव्य सहक्रिया में कार्य करके काकलक ग्रंथि की क्रियाल्पता को सुधारते हैं। यह औषधिद्रव्य धात्वग्निमांद्य, विशेषतः रसधात्वग्नि मांद्य और मेदोधात्वग्नि मांद्य को दूर करते हैं तथा प्रकुपित कफ और वातदोष की सामावस्था को प्रस्थापित करते हैं।

औषधि घटक जैसे शोधित गुग्गुल, चित्रक और कुटकी मेदधातु का चयापचय सुधारकर शरीरभार कम करते हैं। अश्वगंधा और गुडूची उर्जस्कर कार्य करती है तथा प्रतिरक्षा शिथिलता को नियंत्रित करती है।

References:

1. Bipin Sethi, et al. The Thyroid Registry: Clinical and Hormonal Characteristics of Adult Indian Patients with Hypothyroidism. Indian J Endocrinol Metab. 2017 Mar-Apr; 21(2): 302–307.
2. Unnikrishnan AG, Menon UV. Thyroid disorders in India: An epidemiological perspective. Indian J Endocrinol Metab. 2011;15(Suppl 2):S78-S81.
3. Matthew T. Drake. Hypothyroidism in Clinical Practice. Mayo Clinic Proceedings September 2018;93(12):1169-1172.
4. Ratnaparkhe V, Shah H, Upadhyay K. Link between infertility, overweight and subclinical hypothyroidism. Int J Health Sci Res. 2020; 10(2):10-17.
5. Wang Y, Wang H. Effects of Hypothyroidism and Subclinical Hypothyroidism on Sexual Function: A Meta-Analysis of Studies Using the Female Sexual Function Index. Sex Med. 2020;8(2):156-167.
6. Aswathy Prakash C& Byresh A.: Understanding Hypothyroidism in Ayurveda, IAMJ: Volume 3; Issue 11; November- 2015.
7. Singh K, Thakar AB. A clinical study to evaluate the role of Triphaladya Guggulu along with Punarnavadi Kashaya in the management of hypothyroidism. Ayu. 2018;39(1):50-55.

धूतपापेश्वर
१८७२ से आयुर्वेद सेवा

काक्लरक्षक योग
नैसर्गिक थायरॉइड उत्तेजक

थायरॉइड ग्रंथी कार्यक्षमता वर्धक
- बढे हुए TSH का स्तर कम करने में प्रभावी
- विकृत मेद (लिपीड) का स्तर कम करने में लाभदायी
- स्थौल्य में लाभदायी
- रसायन (एँटिऑक्सिडंट)

नॉन-हार्मोनल और सुरक्षित

उपयुक्तता: हायपोथायरॉयडिज्म व्याधी में थायरॉइड ग्रंथी कार्य सुचारु रखने में सहाय्यक।

मात्रा एवं अनुपान:
१ से २ गोलियाँ दिन मे २ बार
खाने से पहले कोष्ण जल के साथ
या चिकित्सक की सलाहनुसार

उपलब्धता:
३० गोली (ब्लिस्टर पॅक)

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 0703584
Kaklarakshak Yog

पाण्डुरोग चिकित्सा में अभ्रलोह की कार्मुकता।

आयुर्वेद ग्रन्थों में **पाण्डुरोग** का उल्लेख प्रधान व्याधियों में किया गया हैं शरीर के प्राकृत वर्ण की हानि या त्वचा के वैवर्ण्य को **पाण्डुता** के रुप में जाना जाता हैं। रोगी की त्वचा का वर्ण **केतकी रज** के समान दिखता है जो किंचित् सफेद या पीले-सफेद रंग का होता है। पाण्डुरोग में त्वक् वैवर्ण्य के साथ, त्वचा की प्रभा में हानि या विकृति देखी जाती हैं।

आचार्य चरक और आचार्य वाग्भट के अनुसार, **पाण्डुरोग रसवह स्रोतस्** की दुष्टी के कारण उत्पन्न होता है, जबकि आचार्य सुश्रुत के अनुसार यह **रक्तवह स्रोतस्** की दुष्टी के कारण होता है। विभिन्न हेतुओं द्वारा प्रकुपित हुए **पित्तादि दोष, रक्तधातु** की दुष्टी करते हैं जिससे **पाण्डुरोग** का उद्भव होता है। **पाण्डुरोग** यह **रस-रक्त प्रदोषज** और **पित्तप्रधान** व्याधि हैं।

पाण्डुरोग के महत्वपूर्ण हेतुओं मे क्षार, अम्ल, लवण रसात्मक द्रव्य, उष्ण भोजन, विरुद्धाशन और अहितकर द्रव्यों का समावेश हैं। अन्य कारणों में दिवास्वाप अधिक व्यायाम, वेगविधारण, असम्यक् पंचकर्म प्रक्रिया, इत्यादि का समावेश है।

उपर्युक्त हेतुओं के कारण, **पित्तप्रधान त्रिदोष** प्रकुपित होकर संपूर्ण शरीर में प्रसारीत होते है, जो धातुओं में गौरव तथा शैथिल्य उत्पन्न करते हैं। **रसधातु** के विकृत होने के कारण अन्य धातु भी विकृत होती है और अन्ततः **ओज** की विशेषताएँ जैसे वर्ण, शरीरबल तथा स्निग्धता को प्रभावित करती हैं। **रक्त** और **मेदोधातु** का क्षय, निःसारत्व तथा इन्द्रियशैथिल्य उत्पन्न कर पाण्डुरोग जन्य वैवर्ण्य का कारण बनता हैं।

हृत्स्पन्दन, रौक्ष्य, स्वेदाभाव, श्रम यह **पाण्डुरोग** के पूर्वरुप हैं। **पाण्डुरोग** के प्रधान लक्षणों में कर्णक्ष्वेड, अजीर्ण, दौर्बल्य, सदन, अन्नद्वेष, श्रम, भ्रम, श्वास, गौरव, अरुचि, अक्षिकूटशोथ, शीर्णलोम, कोपन इत्यादि का समावेश हैं। (चरक संहिता चिकित्सा स्थान १६/१२-१६)

चरकाचार्य ने **पाण्डुरोग** के पांच प्रकारों का उल्लेख उनके हेतुओं के आधार पर इस प्रकार किया हैं - १. वातज, २. पित्तज, ३. कफज, ४. सन्निपातज / त्रिदोषज तथा ५. मृद्भक्षणजन्य

पाण्डुरोग के लक्षण Iron Deficiencies Anemia (IDA) से साधर्म्य रखते है जो कि विश्वभर में आयरन (Fe) पोषक तत्व की कमी से संबंधित एक सर्वसाधारण विकार हैं। IDA स्त्रियों तथा बालकों को अधिक रुप से प्रभावित करता है।[1,2] पाण्डुरोग का बालकों के बौध्दिक तथा शारीरिक विकास एवं वयस्क व्यक्तियों की शारीरिक क्षमता तथा कार्योत्पादकता पर होनेवाला प्रतिकूल प्रभाव यह एक चिंतनीय विषय हैं।[3] यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग ५२% महिलाएँ (अगर्भवती) प्रजननक्षम आयु में Anemic होती हैं।[4]

हुकवर्म, एक मिट्टी से संक्रमित कृमिजन्य विकार बालकों तथा वयस्कों में हिमोग्लोबिन की कमी (Anemia) का कारक होता है। यह कृमि, आन्त्र की वलीयों से जुडकर ऑक्सिजन तथा पोषक तत्व का शोषण करते है। इसका साधर्म्य **मृद्भक्षणजन्य पाण्डुरोग** से है तथा इसकी संप्राप्ति सामान्य पाण्डुरोग के समान होती है।

पाण्डुरोग **चिकित्साः**

साध्य **पाण्डुरोग** की चिकित्सा का प्रारंभ **स्नेहन** के साथ किया जाता है, जिसमें **बाह्य स्नेहन** तथा विभिन्न घृत कल्पनाओं से **आभ्यन्तर स्नेहन** का समावेश है। इसके उपरान्त **वमन** और **विरेचन** के रुप मे उपयुक्त **शोधन** प्रक्रिया का प्रयोग वर्णित हैं।

शोधन प्रक्रिया के उपरान्त, रुग्ण को मुद्ग, आढकी, मसूर तथा मांसरस के सेवन का निर्देश किया जाता है। इसके अतिरिक्त **शमन** तथा **रसायन** चिकित्सा सभी धातुओं का और अन्तिमतः **ओज** का पोषण करती हैं। आचार्य चरक ने **पाण्डुरोग** की चिकित्सा हेतु **'लोह'** का उल्लेख **नवायसचूर्ण** के रुप में किया हैं।

अभ्रलोह यह काल की कसौटी पर परखा हुआ आयुर्वेद **लोहकल्प** तथा **रक्तवर्धक** योग है। **अभ्रलोह** प्राकृतिक रक्तवर्धक हैं जो **लोहभस्म** और **अभ्रकभस्म** इन मुख्य घटकों के कारण **रसायनकर्म** करता है। इन घटकों को **त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद** और **शतावरी** इन औषधि द्रव्यों द्वारा संपूरित किया गया हैं। **त्रिफला, त्रिकटु** और **त्रिमद** प्रभावशाली दीपन और पाचन कर्म करते हैं। **त्रिफला** रसायन है तथा कोष्ठशुद्धि में सहाय्यक होता है। **त्रिकटु** योगवाही तथा कृमिघ्न है। **शतावरी** यह बहूपयोगी-औषधि स्त्रियों के लिए पौष्टिक, पित्तशामक तथा रसधातुपोषक हैं।

लोहाल्पता के कारण होनेवाले **पाण्डुरोग** [Iron Deficiencies Anemia (IDA)] से पीडित रुग्णों में **अभ्रलोह** के लाभकारी प्रभाव को चिकित्सीय अध्ययन (Clinical Trial) द्वारा सिद्ध किया गया हैं।[1]

अभ्रलोह ने Haemoglobin (Hb), Red Blood Cell (RBC) Count, Packed Cell Volume (PCV), Mean Corpuscular Volume (MCV), Mean Corpuscular Haemoglobin (MCH), Mean Corpuscular Haemoglobin Concentration (MCHC), Reticulocyte Count, Serum Ferritin, Serum Iron, Transferrin saturation इन सभी IDA के मापदंडो में ८ सप्ताह की चिकित्सा के बाद उल्लेखनीय रुप से वृद्धि की। **अभ्रलोह** चिकित्सा ने Total Iron Binding Capacity और Peripheral Smear Lymphocyte को कम करके IDA में उपशय प्रदर्शित किया।

फेरस ॲसकॉर्बेट (Ferrous Ascorbate) की तुलना में **अभ्रलोह** चिकित्सा ने Hb, RBC Count, PCV, MCV तथा MCH की मात्रा में उल्लेखनीय सुधार प्रदर्शित किया। इस चिकित्सीय अध्ययन में **अभ्रलोह** को सुसह्य तथा सुरक्षित भी पाया गया।[4]

References: 1. Cold Spring Harb Perspect Med. 2013; 3(7):a011866. 2. Scand J Clin Lab Invest Suppl. 2014; 244:82-9; discussion 89. 3. https://idl-bnc-idrc.dspacedirect.org/bitstream/handle/10625/25059/109343.pdf?sequence=1. 4. International Scholarly Research Network Volume 2012, Article ID 765476, 8 pages. 5. Data on file – Study conducted in Stree Roga and Prasuti Tantra (Obstetrics and Gynaecology) OPD D.Y. Patil Deemed to be University School of Ayurveda, Nerul, Navi Mumbai.

अभ्रलोह®
टेबलेट्स
एकमेव पाण्डुरोगघ्न अग्र्यलोह।

उपयुक्तता
- पाण्डुरोग और संबंधित लक्षण जैसे-
  - वैवर्ण्यता - अधिरता - अरुची
  - दौर्बल्य - श्वास
  - श्रम - हृद्स्पंदन आदि
- पाण्डुरोग से उत्पन्न विषाद
- वृध्दावस्था में उत्पन्न पाण्डुरोग

मात्रा एवं अनुपान
१ से २ गोलियाँ दिन में २ बार भोजन पश्चात् कोष्ण जल के साथ अथवा चिकित्सक की सलाहनुसार

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 0700014
Abhraloha Tablets

उपलब्धता : ३० गोली

मन्यागतवात में रसराजेश्वर रस का महत्व।

आयुर्वेद में ८० प्रकार की **नानात्मज वातव्याधियों** का वर्णन उपलब्ध है जो विशेष रुप से प्रकुपित वातदोष के कारण उत्पन्न होती है। आयुर्वेदानुसार वातदोष के प्रकोप होने के मुख्य कारण हैं – मार्गावरोध तथा धातुक्षय।

वायोर्धातुक्षयात् कोपो मार्गस्यावरणेन च। – च. चि. २८/५९

मन्यागत वात को **वातव्याधि** में अन्तर्भूत किया जा सकता हैं क्योंकि इसका विशेष वर्णन आयुर्वेद के शास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं हैं। आचार्य चरक ने इस व्याधि के विशिष्ट हेतु, पूर्वरुप, रुप, सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा का उल्लेख नहीं किया हैं। परंतु चरकाचार्य ने चिकित्सास्थान के **वातव्याधि** चिकित्सा अध्याय में वर्णित वातव्याधि की सामान्य सम्प्राप्ति और चिकित्सा का जो वर्णन किया हैं वही **मन्यागत वातव्याधि** के लिए भी इष्ट हैं क्योंकि इस व्याधि में मुख्य कारण प्रकुपित **वातदोष** हैं।

देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली। करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रितान्।। – च. चि. २८/१८–१९

धातुक्षयकरैर्वायुः कुप्यत्यतिनिषेवितैः। चरन् स्रोतः सु रिक्तेषु भृशं तान्येव पूरयन्।।
तेभ्योऽन्यदोषपूर्णेभ्यः प्राप्य वाऽऽवरणं बली। – अ.हृ.नि. १५/६

मन्यागतवात की **सामान्य सम्प्राप्ति** में **वातकारक** आहार–विहार के सेवन से वातदोष की वृद्धि समाविष्ट हैं। प्रकुपित **वातदोष** शरीर के रिक्त स्रोतसों (जिन स्रोतसों में स्नेहादि गुणों की शून्यता है) को भर देता हैं और उस स्रोतस् से सम्बन्धित व्याधि उत्पन्न होती हैं।

आचार्य वाग्भट के अनुसार **वातव्याधि** की सम्प्राप्ति इस प्रकार हैं –

धातुक्षय के कारण **वातदोष** प्रकुपित होता हैं, जो पूरे शरीर में संचरण करता है और रिक्त स्रोतसों में स्थान संश्रय करके, उन स्रोतसों को दूषित कर **वातव्याधि** उत्पन्न करता है।

धातुक्षयजन्य वातव्याधि की विशेष **सम्प्राप्ति** में कहा गया हैं कि, शरीर में **श्लेष्मभाव** की कमी से श्लेषक कफ की गुणवत्ता और मात्रा में कमी होती हैं जिसके कारण **सन्धिशैथिल्य** होता हैं। **वायु** और **अस्थिधातु** में **आश्रयाश्रयी सम्बन्ध** होने के कारण **वातदोष की वृद्धि से अस्थिधातु का क्षय** होता हैं जिससे सन्धियों में **खवैगुण्य** उत्पन्न होता हैं।

मार्गावरोधजन्य वातव्याधि की **विशेष सम्प्राप्ति** में कहा गया हैं कि अत्यधिक **मेदोधातु** के संचय से **वातदोष** के प्राकृत मार्ग में **अवरोध** उत्पन्न होता हैं। **इस मार्गावरोध** के कारण प्रकुपित हुआ **वातदोष** सम्पूर्ण शरीर में संचरण करता हैं तथा **खवैगुण्य** युक्त सन्धिप्रदेश में **स्थानसंश्रय** करता हैं। **स्थानसंश्रय** के उपरान्त वह उस विशिष्ट सन्धि में **वातव्याधि** को उत्पन्न करता है।

मन्यागतवात का साधर्म्य सर्वायकल स्पोंडिलोसिस से किया जा सकता है, जो कि एक जीर्ण अपक्षयी (degenerative) विकार है एवं ग्रीवा कशेरुक तथा कशेरुकान्तर्गत गद्दी (disc) को प्रभावित करता है। यह युवा तथा वयस्क दोनों ही समूह की व्यक्तियों को प्रभावित कर सकता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ६५ वर्ष की उपर के १० में से ९ व्यक्ति Cervical spondylosis से प्रभावित होते है। यह जीर्ण मन्याशूल उत्पन्न करके दैनंदिन गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।*

मन्यागतवात को **धातुक्षयजन्य वातव्याधि** के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता हैं। **धातुक्षय,** विशेषतः **अस्थिधातु** का क्षय **मन्यागतवात** में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। **मन्याशूल** इस व्याधि का प्रधान लक्षण हैं तथा अन्य लक्षणों में **मन्याग्रह, भ्रम, मांसबलक्षय** इत्यादि का समावेश है।

अस्थिधातु का संघटन मुख्य रुप से **पृथिवी** और **वायु महाभूत** द्वारा होता हैं। **पृथिवी महाभूत, अस्थिधातु** की स्थिरता, दृढता तथा बल के लिए कारणीभूत हैं, जबकी **अस्थिधातु** को **सुषिरता** वायु महाभूत से प्राप्त होती हैं।

बढती आयु के साथ वातदोष की वृद्धी होती है जिसके कारण क्रमशः **पृथिवी महाभूत** का **क्षय** होता है, जो **अस्थियों** को **सुषिर** बनाता हैं, जिससे **ग्रीवाकशेरुका** के **अपक्षय** (degeneration) की संभावना बढ जाती है। वातदोष के रुक्ष और चल गुण विशेष रुप से इस व्याधि की सम्प्राप्ति में अन्तर्भूत होते है।

मन्यागत वात की चिकित्सा **मन्याशूल** तथा **शोथ** का निवारण करने के साथ अन्तर्विहित सम्प्राप्ति विघटन करने के उद्देश से की जाती हैं।

चिकित्सा निर्देश का हेतु **जठराग्नि** तथा **धात्वग्नि** का कार्य प्राकृत करना, **अस्थि–सन्धियों** को बल प्रदान करना तथा **धातुक्षय** का नियंत्रण करना (अपक्षयात्मक प्रक्रिया के प्रतिबंध हेतु) होना चाहिए।

धातुक्षयजन्य मन्यागतवात का चिकित्सोपक्रम:

स्नेहन	बलातैल, नारायणतैल, माषतैल, इ.।
स्वेदन	ताप, बाष्प, संकरस्वेद तथा उष्ण उपनाह।
रससेवन	मधुर।
गुणसेवन	स्निग्ध, उष्ण।
वातशमन कर्म	बृंहण कर्म।
एकलद्रव्य	सुवर्णभस्म, रजतभस्म, अभ्रकभस्म, बला, अश्वगन्धा, शतावरी, विषमुष्टी, शोधित गुग्गुल, काकमाची इ.।
रसायन कल्प	रससिन्दूर, रसराजरस, बृहत्वातचिंतामणि रस इ.।
गुग्गुल कल्प	गोक्षुरादी गुग्गुल, महायोगराज गुग्गुल, अमृतादि गुग्गुल, पञ्चतिक्तघृत गुग्गुल इ.।
मृदुसंशोधन	द्राक्षा, आरग्वध इ.।
बस्ति	यापनबस्ति, क्षीरबस्ति, मात्राबस्ति, इ.।

रसराजेश्वर रस यह **मन्यागतवात** की चिकित्सा के लिए उत्कृष्ट योग हैं क्योंकि यह अपक्षयात्मक प्रक्रिया की रोकथाम करने तथा लक्षणों में उपशय प्रदान करने की क्षमता रखता है।

रसराजेश्वर रस के मुख्य घटक द्रव्यों की कार्मुकता इस प्रकार है: अपने रसायन गुणों के कारण **रससिन्दूर** तथा **रसराज रस** जैसे उत्तम कल्प प्रकुपित वातदोष का शमन करके तथा धात्वग्नि विकृति को ठीक करके अपक्षयात्मक सम्प्राप्ति को रोकते हैं।

रससिन्दूर योगवाही होने के कारण सम्पूर्ण कल्प की उपयोगिता को वृध्दिंगत करता हैं। **रसराज रस,** जिसमें सुवर्ण, रजत, अभ्रक, लोह तथा वंगभस्म हैं, यह मन्यागतवात की विशेष रसायन औषधि है। अपने उष्णवीर्य के कारण **शोधित विषमुष्टी** एक उत्कृष्ट वातशामक द्रव्य है तथा अपने वेदनाहर कर्म के लिए प्रसिद्ध हैं। **शोधित गुग्गुल** यह वातव्याधि की चिकित्सा के लिए प्रधान शोथहर द्रव्य हैं, जो आमपाचन और वेदनाशमन कर्म भी करता है।

शोधित गुग्गुल और **अर्जुन** सन्धानीय कर्म करते हैं। **अश्वगंधा** और **बला** महत्वपूर्ण रसायन, बल्य और वातशामक औषधि द्रव्य हैं जो विशेषतः Neurodegerative विकारों में लाभदायी हैं। **काकमाची** त्रिदोषहर तथा रसायन कर्म करती हैं।

Reference: * International Journal of Orthopaedics Sciences 2018; 4(2): 478-481.

रसराजेश्वर रस®

सर्ववात विकारों के लिए उत्कृष्ट वातशामक और रसायन।

मात्रा एवं अनुपान

१ से २ गोलियाँ दिन में एक से दो बार दशमूलारिष्ट, बलारिष्ट, महारास्नादि क्वाथ, अश्वगंधारिष्ट, कोष्ण जल के साथ अथवा चिकित्सक की सलाहनुसार

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 1902604
Rasarajeshwar Rasa

उपलब्धता : ३० गोली (ब्लिस्टर पॅक)

हृद्रोग चिंतामणि रस से हृत्संरक्षण।

हृदय शरीर के सबसे महत्वपूर्ण अंगो में से एक है तथा इसे **शिर** और **बस्ति** के साथ **प्रधान मर्म** में से एक के रुप में वर्णित किया गया हैं। **हृदय सद्यः प्राणहर मर्मो** में से एक हैं (जिसका अर्थ है, कि इसपर आघात होने पर तत्काल मृत्यु हो जाती हैं)। **हृदय** यह **प्राणवह, रसवह** तथा **मनोवह** स्रोतसों का **मूलस्थान** है। यह व्यानवायु, साधकपित्त, अवलंबक कफ का भी स्थान हैं। हृदय से जुडी प्रधान दस धमनीयाँ रस, रक्त, इ. का शरीर में अभिसरण करती है। **हृदय दस–प्राणायतनों** में से भी एक हैं।

हृद्रोग का वर्णन चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टांगहृदय और माधव निदान जैसे प्रमुख ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। आचार्य चरक और वाग्भट द्वारा **हृद्रोग** के ५ प्रकार वर्णित है– वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातिक और कृमिज। आचार्य सुश्रुत ने त्रिदोषज **हृद्रोग** का उल्लेख नहीं किया हैं।

हृद्रोग हेतुः

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकबस्तिचिन्ताभयत्रासगदातिचाराः।
छर्द्यामसन्धारणकर्शनानिहृद्रोगकर्तृणितथाऽभिघातः।। – च.सू.२६/७७

अतिव्यायाम, तीक्ष्णगुणात्मक आहारद्रव्यों का सेवन, वमन, विरेचन और बस्ति उपक्रमों का अतियोग, अतिचिंता–भय–त्रास– गदातिचार (व्याधियों की अनुचित चिकित्सा), छर्दि, आम (अयोग्य पचन तथा चयापचय प्रक्रिया से उत्पन्न), वेगसन्धारण, कार्श्य, अभिघात (शारीरिक तथा मानसिक आघात), इत्यादि **हृद्रोग** के मुख्य हेतु है।

हृद्रोग सम्प्राप्तिः

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते।। – मा. नि. २९/२

उपर्युक्त कारणों से दोष प्रकुपित होते हैं तथा **रसधातु** को दुष्ट करते हैं। **हृदय** यह **रसधातु** का स्थान होने के कारण प्रकुपित दोष **हृदय** में स्थान संश्रित होते है और **हृद्रोग** उत्पन्न करते हैं। हृद्रोग के फलस्वरुप हृदय में संरचनात्मक (Structural) तथा कार्यात्मक (Functional) विकृति उत्पन्न होती है।

हृद्रोग के महत्वपूर्ण लक्षणों में वैवर्ण्य, मूर्च्छा, हिक्का, श्वास, तृष्णा, छर्दी, कफोत्क्लेश और रुजा का समावेश हैं।

हृद्रोग चिकित्साः

तन्महत् ता महामूलास्तच्चौजः परिरक्षता। परिहार्या विशेषेण मनसो दुःखहेतवः।।
हृद्यं यत् स्याद्यदौजस्यं स्रोतसां यत् प्रसादनम्। तत्तत् सेव्यं प्रयत्नेन प्रशमो ज्ञानमेव च।।
– च. सू. ३०/१४

हृदय, महाधमनी तथा **ओज** की परिरक्षा के लिए मानसिक पीडा से बचाव (रक्षण) आवश्यक हैं। ऐसे आहार, औषधि तथा विहार का नियोजन करना चाहिए जो हृदय के लिए हितकर हो, ओज का निर्माण करे तथा स्रोतोशुध्दि करें। यह स्पष्ट रुप से कहा गया है कि **हृद्रोग** की चिकित्सा में औषधि जो आमपाचन करे, स्रोतसावरोध दूर करे और **रसायन** औषधि जो ओज का रक्षण करे तथा अवसाद और चिन्ता को दूर करें इनका प्रयोग करना चाहिए।

२०१६ में भारत में Cardiovascular diseases (CVD) का प्रसार ५४.५ दशलक्ष होने का अनुमान लगाया गया था। CVD के कारण होनेवाली मृत्युओं में Ischemic Heart Disease तथा Stroke का योगदान ८३% होने का अनुमान है। CVD रुग्णों को उनके जीवन के सर्वाधिक उत्पादक वर्षो में प्रभावित करती है जिसके परिणामस्वरुप, उनकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव होता है।[1] Acute Myocardial Infarction यह IHD की एक गंभीर स्थिति हैं जो विश्वभर में हृद्रोग से होनेवाली मृत्युओं का सबसे महत्वपूर्ण कारण है।[2]

यह सर्वविहित है कि Ischemic (रक्त की आपूर्ती कम होना) हृत्पेशी में Free radicals की उत्पत्ती होती है जो हृदय में संरचनात्मक तथा क्रियात्मक विकृती का कारण बनते है।[3] यह Ischemia की स्थिति अधिक काल तक बने रहने पर Myocardial infarction (Heart attack) उत्पन्न होकर हृत्पेशी निष्क्रिय हो जाती है।

आयुर्वेदशास्त्र में वर्णित औषधि द्रव्य, रसौषधि तथा विभिन्न योग IHD का प्रतिबंध करने में लाभदायी हैं। **हृद्रोग चिंतामणि रस** यह हृक्रिया को प्राकृत करनेवाले हृत्संरक्षक घटकों का प्रभावी संयुक्तिक योग हैं।

घटकद्रव्य	कर्म
बृहत्वात चिंतामणि रस	हृत्बल्य तथा मस्तिष्कबल्य।
अकीकपिष्टि	हृद्य।
अर्जुन	हृत्संरक्षक तथा मेदोहर (Hypolipidemic)।
जटामांसी	हृत्संरक्षक, मेदोहर तथा मस्तिष्क शामक।
मंजिष्ठा	हृत्संरक्षक तथा ऑक्सिकरण विरोधी (antioxidant)।
अभ्रक भस्म	रसायन।
पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज	रसायन।
दशमूल क्वाथ	शोथहर तथा रक्तघनता विरोधी।

हृद्रोग चिंतामणि रस का हृद्यकर्म, Isoproterenol (ISO) जन्य हृत्विषाक्तता (Cardiotoxicity) के प्रयोगात्मक अध्ययन में सिद्ध हुआ है। **हृद्रोग चिंतामणि रस** ने ISO प्रेरित हृदय की विकृत् विद्युत गतिविधियों का नियंत्रण किया (ई.सी.जी. द्वारा प्रमाणित)। ISO जन्य हृत्विषाक्तता दर्शक घटक (Marker enzymes) जैसे कि एस्परटेट एमिनोट्रांस्फरेज (AST), लैक्टेट डिहाइड्रोजनेज (LDH), तथा क्रिएटिन काइनेज –एमबी (CK-MB) के विकृत स्तर को **हृद्रोग चिंतामणि रस** ने नियंत्रित किया। **हृद्रोग चिंतामणि रस** ने ISO प्रेरित ऑक्सिकरण (Oxidation) का नियंत्रण करके हृत्संरक्षण भी किया। हिस्टोपॅथोलॉजिकल अध्ययन से इंगित हुआ कि **हृद्रोग चिंतामणि रस** ने ISO प्रेरित हृत्पेशी में निर्माण होनेवाले Fibrosis तथा Necrosis की तीव्रता को कम किया।[४]

References:
1. Circulation 2016;133(16):1605-1620, 2. Pharmacology 103, 291–302, 3. Am J Physiol. 1984 Jun;246, 4. Data in file – Study conducted in Department of Pharmacology, Shobhaben Pratapbhai Patel School of Pharmacy and Technology Management, Vile Parle, Mumbai.

हृद्रोग चिंतामणि रस®
हृदयसंरक्षक एवं आयुवर्धक ।

मात्रा एवं अनुपान
१ से २ गोलियाँ दिन में एक या दो बार दशमूलारिष्ट, अर्जुनारिष्ट, गोदुग्ध, शहद, कोष्ण जल के साथ अथवा चिकित्सक की सलाहनुसार।

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 1902594
Hrudroga Chintamani Rasa

उपलब्धता : ३० गोली (ब्लिस्टर पॅक)

धूतपापेश्वर
१८७२ से आयुर्वेद सेवा

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :
स्वास्थ्य सेवा विभाग
श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड
१३५, नानुभाई देसाई रोड, खेतवाडी, मुंबई- ४०० ००४.
फोन : ९१-२२-६२३४ ६३०० फॅक्स : ९१-२२-२३८८ १३०८
ई-मेल : healthcare@sdlindia.com
वेब साईट : www.sdlindia.com

केवल पंजीकृत चिकित्सक, अस्पताल या प्रयोगशालाओं के लिये
© November 2020 Shree Dhootapapeshwar Limited